Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

विष्णुतत्त्व की उपादेयता

भानु प्रकाश उनियाल
शोधार्थी
देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज,
शांतिकुंज हरिद्वार, भारत।

Article Info
Volume 4 Issue 1
Page Number: 23-32
Publication Issue :
January-February-2021

सारांश– भगवान् की पूजा के लिए भारत में हजारों मन्दिर हैं जहाँ पर भक्ति का अभ्यास किया जाता है। जब ऐसा अभ्यास हो रहा हो, तब मनुष्य को चाहिए कि आध्यात्मिक लाभ लेना अति आवश्यक है क्योंकि जीवन का नित्य भौतिकता से एवं कल्मषता से ही सामना होता है जिससे अनेक नकारात्मक ऊर्जा प्राप्त होती है। खान–पान, रहन–सहन भी कुछ हद तक आज के परिवेश में नकारात्मकता एवं कलुषित वातावरणयुक्त जीवनचर्या पैदा हो रही है। जिससे आध्यात्मिकता कोषों दूर हो रही है। अत: स्थिरता पूर्वक ध्यान, योग, जप, तपादि आध्यात्मिक वातावरण आश्रय लेकर ही इस कठिन दौर से निकलना पड़ेगा। अन्यथा दूसरा कोई भी उपाय नहीं है।

Article History
Accepted : 10 Jan 2021
Published : 20 Jan 2021

मुख्यशब्द – विष्णुतत्त्व, भारतीय संस्कृति, धर्मयज्ञ, वेद, संस्कृति वैदिक, ध्यान, योग, जप, भक्ति।

भारतीय संस्कृति में देव–ऋषि परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। वेदकालीन सभ्यता सत्वगुण से संपन्न एवं सार्वभौम थी। सर्वत्र धर्मयज्ञ, वेद और वैदिक संस्कृति ही दृष्टिगोचर होती थी। समय परिवर्तन के साथ लोग बदले, संस्कृतियाँ बदली, मान्यताएं एवं रीति–रिवाजों में भी बदलाव आ गया। तथापि हमारी भारतीय संस्कृति वैदिक ऋषियों की देव पूजन पद्धति एवं सर्वत्र भगवत्ता के दर्शनरूपी सभ्यता आज भी अक्षुण्ण एवं अखण्ड है। न जाने कितनी बार हमारी संस्कृति पर आक्रमण हुए यहाँ तक कि भारतीय संस्कृति की धरोहर वेद–पुराण उपनिषदादि धर्मग्रन्थों को जलाया गया। अन्य भाषाओं को जन–जन फैलाने का और वैदिक संस्कृतभाषा को मिटाने का अथक प्रयास किया गया, फिर भी हमारी वैदिक सनातन पौराणिक संस्कृति दैवीय–परम्परा अक्षुण्ण एवं अखण्ड है। इसका मुख्य कारण सर्वव्यापक परमात्मा विष्णुतत्त्व है। जो सृष्टि के आदि, मध्य एवं अन्त में विराजमान होकर समस्त चराचर सृष्टि को सम्पादित करते हैं। यथा–

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैवचास्थितम्।

स्थितिसंयमकर्ताऽसौ जगतोऽस्य जगच्च सः।।[1]

यह जगत् विष्णु से उत्पन्न हुआ है। उन्हीं में स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लय के कर्त्ता हैं तथा यह सम्पूर्ण चराचर जगत उन्हीं (विष्णु) का रूप है। उन्हीं के कारण सूर्य तपता है, वायु बहती है, इन्द्र वर्षा करता है, अग्नि जलाती है तथा मृत्यु अपने कार्य में प्रवृत्त होती है। उनके ही द्वारा तारामण्डल चमकता है। सारी वनस्पतियाँ समय-समय पर फल देते हैं। उन्हीं के द्वारा नदियाँ बहती हैं। समुद्र अपनी मर्यादा नहीं लाँघता, पर्वतों के सहित पृथ्वी जल में नहीं डूबती। यह आकाश जीवित प्राणियों को श्वास-प्रश्वास के लिए अवकाश देता है। महत्तत्व अहंकार रूप शरीर सात आवरणों के रूप में ब्रह्माण्ड के रूप से विस्तार करता है तथा वे स्वयं भी सत्वादिगुणों के नियामक देवगण जिनके अधीन यह सारा चराचर जगत है। अपने जगत रचना आदि कार्यों में युगकर्म से तत्पर रहते हैं।

यद्भयाद्वाति वातोयं सूर्यस्तपति यद्भयात्।

यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात्।।

यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिर्सह।

स्वे स्वे कालऽभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च।।

श्रवन्तिसरितोभीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः।

अग्निरिन्धेसगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात्।।

नभो----------।।[2]

इस तरह सम्पूर्ण चराचर में व्याप्त भगवान् विष्णु ही सर्वनियन्ता हैं। हम सभी को उनके द्वारा बताये हुए नीति एवं शास्त्र-सम्मत सिद्धान्तों पर आचरण करना चाहिए। जो हमारा प्रमुख कर्त्तव्य है। समय परिवर्तन के साथ-साथ हम अपने कर्त्तव्यों को भी भूलते जा रहे हैं। जिससे आज का संसार भयवह एवं अशान्त है।

विष्णुत्तत्व की व्यापकता में एकता व सामाजिकता

भगवान् विष्णु का प्रत्येक सिद्धान्त एवं उनके द्वारा रचित प्रकृति से होने वाली आचरण शक्ति हम सभी के लिए जीवनोपयोगी है। जिसको धारण करना मानव का परम कर्त्तव्य है। यद्यपि वह विष्णुतत्त्व सर्वत्र व्यापक है; लेकिन व्यापकता में अनेकता न होकर एकता है। जो दृष्टि हमें अनेकता में बाँटती है, सामाजिक, राजनैतिक, साम्प्रदायिक, आर्थिक, आध्यात्मिक आदि रीतियों से हमको आपस में लड़ाकर आतंक का पर्याय बनाती है। उसको विष्णुतत्त्वात्मक दृष्टि से एकता एवं समाजिकता के सूत्र में बाँधने का कार्य ही हमारा ध्येय है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारिचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।[3]

नीतिशास्त्र का यह श्लोक सुप्रसिद्ध है कि मेरा और तेरा के बीच की लड़ाई ही अज्ञान का मुख्य कारण है। जो लघु हृदय वाले यानि मन्द–बुद्धि व्यक्तियों की सोच है। उदार हृदय वाले व्यक्ति समस्त पृथ्वी को अपना कुटुम्ब मानते हैं।

भगवान् स्वयं गीता में कहते हैं –

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।[4]

भगवान् ने सर्वत्र अपने आपको व्याप्त कहा है। समस्त जीव जड़–चेतन, स्थावर– जंगम भगवान् विष्णु के ही रूप हैं। इस नाते समस्त विश्व ही हमारा अपना है। तब अनेकता का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता, जो इस सिद्धान्त को नहीं मानता वह विद्रोह खड़ा करता है। जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्व से पुरुषोत्तम जानता है। वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्त मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है। समाज में अनेक वर्ग, अनेक जातियाँ, अनेक रूप–गुण स्वभाव वाले प्राणि निवास करते हैं। भगवान् को जो जिस भाव से मानता है। उसी भाव में वह परमात्मा उनका कल्याण करते हैं। यही सामाजिकता ही विश्व को एकीकरण करने का कार्य करता है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।[5]

सनातन चिन्तन की मूलप्रकृति में मूल और उनकी शाखा के महत्त्व को सुदूर अतीत में ही समझ लिया गया था। यथा–

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।[6]

आदि पुरुष नारायण वासुदेव भगवान् ही नित्य और अनन्त तथा सबके आधार होने के कारण सबसे ऊपर नित्य धाम में सगुण रूप से वास करने के कारण ऊर्ध्व नाम से कहे जाते हैं और वे मायापति सर्वशक्तिमान परमेश्वर ही इस संसाररूप वृक्ष के कारण हैं। इसलिए इस संसार वृक्ष को ऊर्ध्वमूल वाला कहते हैं। उस तत्त्व से उत्पत्ति वाला होने के कारण तथा नित्य धाम से नीचे ब्रह्मलोक में वास करने के कारण हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मा को परमेश्वर की अपेक्षा अधः कहा है और वही इस संसार का विस्तार करने वाला होने से इसकी मुख्य शाखा है, इसलिए इस संसार वृक्ष को अधः शाखा वाला कहते हैं। उस वृक्ष का मूल (कारण) परमात्मा अविनाशी हैं तथा अनादिकाल से इसकी परम्परा चली आती है। इसलिए इस संसाररूपी अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष को अविनाशी कहते हैं। इस पृथ्वी की शाखारूप ब्रह्मा से प्रकट होने वाले और यज्ञादिक कर्मों के द्वारा इस संसार वृक्ष की रक्षा और वृद्धि करने वाले एवं शोभा को बढाने वाले होने से वेद पत्ते कहे गये हैं।

भगवान् की योगमाया से उत्पन्न हुआ संसार क्षणभंगुर, नाशवान् और दुःखरूप है। इसके चिन्तन को त्यागकर केवल परमेश्वर का ही नित्य–निरन्तर अनन्य प्रेम से चिन्तन करना वेद के तात्पर्य को जानना है।

इस प्रकार वह परमात्मा तीनों गुणों एवं तीनों रूपों से व्याप्त होकर सामाजिक एकता को प्रतिष्ठित करते हैं। जैसे– एक माँ के चार पुत्र अलग–अलग रूप, गुण, स्वभाव वाले होते हैं, तब भी वह एक कोख से जन्म लेने के

कारण भाई-भाई के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। समाज में अपने-अपने गुणों के अनुरूप कार्य करते हुए उसी माँ के ही सुपुत्र कहलाएंगे। उसी प्रकार समाज में अनेक गुण-कर्म अनुसार भिन्नता दीखती है; लेकिन भगवान् के अंश होने के कारण सभी जीव एक ही हैं और एक होने के नाते सामाजिकता में भी एकता ही होनी चाहिए।

यद्यपि भगवान् 'त्रिक्' के महत्त्व को दर्शाते हैं। त्रिक् का अभिप्राय तीन स्वतन्त्र ईकाई से नहीं है; बल्कि तीनों की समष्टि से है। पूर्व पृष्ठों में त्रि-मूर्ति, त्रि-परमेश्वर आदि वर्णन किया गया है। अत: यहाँ वही भाव लेना चाहिए। त्रिक् आश्रित अवधारणाओं में 'त्रिलोक, त्रिदेव, त्रिवेद, त्रिगुण, त्रितत्त्व, त्रिकाल, त्रिवेणी, आदि न केवल बहुमान्य और प्रचलित हैं अपितु इनका स्थूल परिधि का ज्ञान सामान्यजन को भी है। इनमें प्रथम महत्त्वपूर्ण त्रिक्-त्रिलोक है। त्रिलोक कहने मात्र से समाज का बहुत्व के दर्शन होते हैं। अलग-अलग लोकों का तत्तद् समाज भी होगा।

पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यो, अग्नि, वायु, आदित्य को जो महाव्योम अथवा आकाश बनाता है। त्रिदेव अर्थात तीन संचालक प्राणों की आरम्भिक अवधारणा इसी रूप में विकसित हुई। मैत्रण्युपनिषद् के छठे प्रपाठक में अपरा प्रजापति (त्रिपाद ब्रह्म) के वर्णन में विभिन्न त्रिकों द्वारा उसके भास्वती तनु (आ-उ-म =) लोकवती तनु- भू: भुव: स्व:। विज्ञानवती तनु, ऋक्, यजु, साम्। प्राणवती तनु- प्राण, अपान, व्यान। कालवती तनु- भूत, वर्तमान, भविष्य। आप्यायनवती तनु- अमृत, अप, चन्द्रमा। चेतनवती तनु- बुद्धि, मन, के साथ ही देववती तनु- ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु का त्रिक् स्वीकृत हुआ है।

अत: ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र। त्रिमूर्ति से तीन विभाग हैं; लेकिन यह विभाग एक ही आनन्द तत्त्व को पाने के लिए ही तीन शक्तियों में कार्य करते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि इनमें अनेकता है। अनेक होने के बावजूद भी समाज को एकसूत्र में बाँधने के लिए यह तीन शक्तियाँ अलग-अलग कार्य करती है। मनुष्य को जिस प्रकार भोजन बनाने के लिए अनेक सामग्रियों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भगवान को भोजन रूपी आनन्द, मोक्ष, निर्वाण दिलाने के लिए कई रूप धारण करने पड़ते हैं। जिस तरह हथेली की पाँचों उंगलियाँ अलग-अलग कार्य करती है; लेकिन मूल हथेली से ही निर्दिष्ट होती हैं। उसी प्रकार विष्णु की व्यापकता में एकता समाहित है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण के कपिलोपाख्यान में वर्णन आता है-

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थित: सदा।

तमवज्ञाय मां मर्त्य: कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्।।[7]

भगवान् कहते हैं कि सभी जीवों में मैं सदा आत्मारूप से विद्यमान हूँ। इसलिए जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्मा का अनादर करके केवल मूर्तिरूप में ही मेरा पूजन करते हैं, उनकी वह पूजा स्वांगमात्र है।

यहाँ परमात्मा का मानव धर्म एवं सभी मनुष्यों में भगवत्ता के दर्शन कराने का अनूठा प्रयास हुआ है। मूर्तिपूजन का विरोध नहीं है बल्कि संकुचित विचारधारा से वैश्विक बुद्धि का विकास करना है। सबका आत्मा परमेश्वर सभी भूतों में स्थित हैं, ऐसी दशा में मोहवश होकर जो मनुष्य एक-दूसरे की उपेक्षा करके केवल मूर्तिपूजा में ही लगा रहता है।

वह मानो भस्म में ही हवन करता है। यहाँ मानव को देवतुल्य मानकर उसकी पूजा करने का आदेश दिया गया है। यही सिद्धान्त सामाजिकता का मुख्य अंग है। जो भेददर्शी और अभिमानी पुरुष दूसरे जीवों के साथ वैर बाँधता है या हिंसा करता है और इस प्रकार उनके शरीर में विद्यमान मुझ आत्मा से ही द्वेष करता है। उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। जो दूसरे जीवों का अपमान करता है, वह बहुत सी घटिया–बढिया समग्रियों से अनेक प्रकार के विधि–विधान के साथ मेरी मूर्ति का भी पूजन करे तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं हो सकता।[8]

यहाँ जो धनहीन या उपेक्षित समाज है, उसकी सहायता तथा उससे प्रेम करने का आदेश दिया गया है। जिसे भगवान् अपनी ही पूजा मानते हैं। कितनी एकरूपता तथा सामाजिक मानवीय संवेदना का सम्मान और आदर्श और किसी संस्कृति मे नहीं देखा जा सकता। यही भगवान् विष्णु की व्यापकता का कारण है। जिसे समाज में चरितार्थ करना चाहिए।

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।

अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा।।[9]

अत: सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर घर बनाकर उन प्राणियों के ही रूप में स्थित मूल परमात्मा का यथायोग्य दान, मान, मित्रता का व्यवहार तथा समदृष्टि के द्वारा पूजन करना चाहिए।

आध्यात्मिकता

भगवान विष्णु अध्यात्म जगत के प्रसिद्ध व्याख्याता हैं। पौराणिक काल में भगवत्ता को प्राप्त सन्त उन्हीं को माना जाता था जिनको आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हो जाती थी। भगवान की सत्ता को स्वीकार कर अपने अन्दर तथा बाहर उसे एक परमात्मा का दर्शन करना अध्यात्मिक ज्ञान का होना कहा जाता है। समस्त वैदिक पौराणिक पद्धतियों के अनुसार ही आचरण करना, जीवन यापन करना ही आध्यात्मिक ज्ञान है व्रत, जप, तप, ध्यान यज्ञ अनुष्ठान आदि आध्यात्मिकता के परिचायक हैं इन्हीं से संपन्न अध्यात्म कल्याणकारी होता है। जीव का आध्यात्मिक होना भगवान की प्रसन्नता है जीव जब मनसा वाचा कर्मणा पवित्र हो जाता है तब भगवान प्रसन्न हो जाते हैं भगवान का प्रसन्न होना जगत में कल्याण एवं सौहार्द्रता का प्रतीक है सारी पृथ्वी सस्य श्यामला होकर हर्षित हो जाती है भगवान की प्रसन्नता ही जीव का कल्याणकारी उद्देश्य है। भागवत में प्रथम स्कन्द की कथा है जब भीष्म कृष्ण पाण्डवों को उपदेश देकर विदा हो जाते हैं सभी पाण्डवों को हृदय अन्त: करण ज्ञान से आध्यात्मिक विचारों द्रवित हो जाता है उनकी मनस्थिति भगवानमय हो जाती है। उनकी हर एक क्रिया नियमानुसार प्रकट होती है जिससे भगवान को बड़ी प्रसन्नता होती है आध्यात्मिकता से जीव का प्रतिकूल वातावरण भी अनुकूल दिखायी पड़ता है।

निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रम:।

शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रय: परिध्युपान्तामनुजानुवर्तित:।।[10]

भीष्मपितामह और भगवान श्री कृष्ण के उपदोशों के श्रवण से उनके अन्त:करण में विज्ञान का उदय हुआ और भ्रान्ति मिट गयी। भगवान के आश्रयमें रहकर वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका इन्द्र के समान शासन करने लगे। आध्यात्मिक जीवन का फल हमेशा सुखप्रद होता है मन मे दया, करुणा, ममत्व, प्रेम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तथा शुष्ठु जीवनचर्या

को ही धारणकर भगवान का सुमिरन दर्शन ही आध्यात्मिक ज्ञान है। जिस व्यक्ति के भीतर आध्यात्मिकता रहती है उसको प्रकृति भी अपना सम्पूर्ण योगदान देती है यथा–

कामं ववर्ष पर्जन्य: सर्वकामदुघा मही। सिषिचु: स्म व्रजान् गाव: पयसोधस्त्वतीर्मुदा।।

नद्य: समुद्रा गिरय: सवनस्पतिवीरुध:। फलन्त्योषधय: सर्वा: काममन्वृतु तस्य वै।।

नाधयो व्याधय: क्लेशा दैवभूतात्महेतव:। अजातशत्रवाभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित्।।[11]

युधिष्ठिर के राज्य में आवश्यकतानुसार यथेष्ट वर्षा होती थी, पृथ्वी में समस्त अभीष्ट वस्तुयें पैदा होती थी बड़े–बड़े थनोवाली बहुत सी गौयें प्रसन्न रहकर गौशालाओंको दूध से सींचती रहती थी। नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वनस्पति, लतायें और औसधियाँ प्रत्येक ऋतु में यथेष्ट रुप से अपनी–अपनी वस्तुयें राजा को देती थी। अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर के राज्य में किसी प्राणी को कभी भी आधि–व्याधि अथवा दैविक–भौतिक और आत्मिक क्लेश नहीं होते थे। यह सब भगवान की प्रसन्नता से ही सम्भव हुआ इस जगत में जिसके स्वरूप का साक्षात्कार जितेन्द्रिय योगी अपने प्राणों को वश में करके भक्तिसे प्रफुल्लित निर्मल हृदय में किया करते हैं। वे श्रीकृष्ण साक्षात परब्रह्म हैं इन्हीं की भक्ति से अन्त:करण की पूर्ण शुद्धि होती है यथा–

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वन:।

पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुर्महति।।[12]

जो तामसिक बुद्धि वाले अधर्म से या नास्तिकता से अपना पेट पालने लगते हैं तब यही सत्त्वगुण को स्वीकार कर एश्वर्य, सत्य, ऋत, दया और यश प्रकट करते है और संसार के कल्याण के लिये युग–युग में अनेकों अवतार धारण करते हैं। तथा कुमार्गी जीवों को आध्यात्मिक दृष्टि देकर उनका भी कल्याण करते हैं। भगवान के प्रति प्रेम एवं विश्वास का फल ही आध्यात्मिक उत्कर्ष है सच्ची निष्ठा से किया हुआ कार्य वरदान साबित होता है वसुदेव अक्रूर आदि का सच्चा हृदय और भगवान के प्रति प्रेम ही उनको भगवान के दिव्य वैकुण्ठ दर्शन करा दें। भगवान से प्रेम करना अध्यात्म जीवन का सबसे उत्तम–उत्कर्ष कहलाता है जब–जब मनुष्य पथ भ्रष्ट होकर जीवन के मूल्यों को खो बैठता है तब–तब अध्यात्म जीवन ही मानवीय सद्भावनाओं को जीवित रखता है। मनुष्य के पास सब कुछ होने के बाद भी अध्यात्म जीवन नहीं है तो वह शून्य ही है भागवत में लिखा है यथा–

अकाम: सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधी:।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।।[13]

कि बुद्धिमान पुरुषों को चाहिए निष्काम होकर या समस्त कामनाओं से युक्त होकर मोक्ष चाहने पर भी भगवान की उपासना तीव्र भक्तियोगसे करनी चाहिए। कहा है कि सौन्दर्य की चाहत हो तो गन्धर्वों की पूजा करें। पत्नीकी प्राप्ति के लिए उर्वशी, की स्वामित्व की प्राप्ति हेतु ब्रह्माकी, यश के लिए यज्ञपुरुषकी, खजाने के लिए वरुणकी, विद्या के लिए शंकर की, पति–पत्नी के प्रेम को बनाये रखने के लिए शिव–पार्वतीकी, धर्मोपार्जन के लिए विष्णुकी, वंश परम्परा के लिए पितरोंकी बाधाओं से बचने के लिए यक्षोंकी, ताकत के लिए मरुद्गणोंकी आराधना करनी चाहिए। जितने भी उपासक हैं उनका सबसे बड़ा हित इसी में है कि वे भगवान के प्रेमीभक्तों का संग करके भगवान में अविचल प्रेम प्राप्त करलें।[14] एसे पुरुषों सत्संग में जो भगवान की लीला–कथायें होती हैं उनसे उस दुर्लभ ज्ञान की

प्राप्ति होती है। जिससे संसार–सागरकी त्रिगुणमयी तरंग मालाओंके थपेड़े शान्त हो जाते हैं हृदय शुद्ध होकर आनन्दका अनुभव होने लगता है इन्द्रियों के विषयों में आशक्ति नहीं रहती केवल्यमोक्ष का सर्वसम्मत मार्ग भक्तियोग प्राप्त हो जाता है। भगवान के प्रति इस तरह की भावना अध्यात्मिक उक्ति है। जो मनुष्य भगवानका प्रेमी नहीं होता उनकी कथादि विषयों में रूचि नहीं रखता और भगवान से द्वेष करता है। उसके कान बिल के समान हैं जो जीभ भगवान के लीलाओं का गायन नहीं करती वह मेढककी जीभ के समान टर्र–टर्र करने वाली है उसका तो न रहना ही अच्छा है। जो शिर कभी भगवान की चरणों में झुकता नहीं वह रेशमी वस्त्रसे सुसज्जित और मुकुटसे युक्त होने पर भी बोझ ही मात्र है। जो हाथ भगवान के चरणों की सेवा के लिए नहीं उठते वे रत्नोंसे ज़डित कंगन होने के बाद भी मुर्दे के हाथ के समानही है। जो आँखें भगवान के दर्शन के लिए लालायित नहीं होती, मूर्ति और मनुष्योंमें अथवा प्राणी मात्रमें भगवान विष्णु के दर्शन नहीं करते वह मोर के पंखों में बने हुए आँख की आकृति जैसा ही प्रतीत होता है। मनुष्यों के पैर अगर भगवान के तीर्थ स्थलों का भ्रमण नहीं करते वह पेड़ों के समान ही है। यथा–

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः।।
भारः परं पट्टकिरीटजुष्ट मप्युत्तमांगं न नमेन्मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्कांचनकंकणौ वा।।
बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्रणि नानुव्रजतो हरेर्यौ।।[15]

हृदय वही है जो भगवान के मंगलमय नामों का श्रवण–कीर्तन करने से पिघलकर उन्हीं की ओर बहता रहता है। जिस समय हृदय पिघल जाता है उस समय नेत्रें में आँसू छलकने लगते हैं और शरीर का रोम–रोम खिल उठता है। और वाणी हृदय को मधुरता से भर देती है। तो उस समय उस विधि को अध्यात्म जीवन का उत्कर्ष कहा जाता है। और यही उत्कर्ष मनुष्य को भगवत्ता प्रदान करता है। जीवन को जीने के लिए भौतिक दैविक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का होना अतिआवश्यक है। इन तीनों में से आध्यात्मिकता हो जाए तो भौतिक एवं दैविक शक्तियों से कभी दुःख नहीं होता और मानव प्रसन्न रहकर जीवन–यापन करता है। अगर भौतिक एवं दैविक या दैहिक सुख मिले और अध्यात्म सुख न हो मनुष्य–मनुष्यता को कभी प्राप्त नहीं होता वह सदैव दुखित जीवन को ही जीता है। दक्ष प्रजापति के सामने सभी भौतिक एवं दैहिक सुखसंसाधन होने के बाद भी वह अध्यात्म ज्ञान के बिना दुःखको प्राप्त हुआ। क्योंकि भगवान का निरादर करना ही अहंकार को जन्म देना है। और अहंकार युक्त की हुयी समस्त क्रियाएँ व्यर्थ ही होती हैं जिससे केवल दुःख की प्राप्ति होती है। शुद्धचित्त में स्थित भगवत प्रेम ही सर्व ग्राह्य है इसी कारण दक्षप्रजापति को सम्म्राट रहते हुए भी अपना सर कटाना पड़ा। और बदले में बकरे का सिर धारण करना पड़ा। सती कहती हैं कि यदि निरंकुश लोग धर्ममर्यादा की रक्षा करने वाले अपने पूजनीय स्वामी की निन्दा करें तो अपने में उसे दण्डदेनेकी शक्ति न होने पर कान बन्द करके वहाँ से चला जाना चाहिए। और यदि शक्ति हो तो बल पूर्वक पकड़कर उस अनिष्ट बोलने वाली अमंगल रूप दुष्ट जिह्वा को काट डालें इस पाप को रोकने के लिए स्वयं अपने प्राण तक दे दें यही धर्म है। यहाँ धर्म का अर्थ तत्कर्तव्य बोध करानेसे है यथा–

कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने।

छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः।।[16]

जब-तक कर्तव्यबोध का पालन न हो तब तक जीवनचर्या का नियमन न हो सकता है। दक्ष अपनी गलती को स्वीकार करते हुए कहते हैं-

योऽसौ मयाविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम्।

अर्वाक् पतन्तमर्हत्तमनिन्दयापाद् दृष्टयाऽऽर्द्रया स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत्।।[17]

मैं भगवान के तत्व को नहीं जानता था इसीसे मैनें भरी सभा में भगवान शिव को वाग्वाणोंसे भेदा था किन्तु आपने मेरे उस अपराध का कोई विचार नहीं किया मैं तो आप-जैसे पूज्यतम महानुभावों का अपराध करने के कारण नराकादिनीच लोकोंमें गिरने वाला हूँ। परन्तु आपने-अपनी करुणा भरी दृष्टि से मुझे उबार लिया अबभी आपको प्रसन्न करने योग्य मुझमें कोई गुण नहीं है। बस आप अपने ही उदारतापूर्ण बरताव से प्रसन्न रहें मुझे अपने किये हुए की सजा मिल गयी है। अध्यात्म जीवन सर्वश्रेष्ठ मानवों को प्राप्त होता है। जो मानव इस जीवन में आध्यात्मिकता का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। वह फिर अज्ञान रूपी अन्धकार में नहीं भटकता। भगवान् पर भरोसा करके कर्मों का परिपाक करना आध्यात्मिकता का श्रेष्ठ लक्षण है। हमेशा सुमिरन एवं स्मरण बन जाना भगवान् की कृपा का अनुभव करते रहना मनुष्य जनम का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है क्योंकि जिस प्रकार इस भौतिक जगत् में सविधान का नियम है जो यह बताते हैं कि राजा न तो दण्डनीय है, न ही किसी राजनियमों के अधीन रहता है, उसी तरह यद्यपि भगवान् इस भौतिक जगत् के स्रष्टा हैं किन्तु वे भौतिक जगत् के कार्यों से प्रभावित नहीं होते। सृष्टि करने पर भी वे इससे पृथक् रहते हैं जबकी जीवात्मायें भौतिक कार्यकलापों के सकाम कर्मफलों में बँधी रहती है, क्योंकि उनमें प्राकृतिक साधनों पर प्रभुत्व दिखाने की प्रवृत्ति रहती है। किसी संस्थान का स्वामी कर्मचारियों के अच्छे-बुरे कार्यों के लिए उत्तरदायि नहीं, कर्मचारी स्वयं इसके लिए उत्तरदायी हैं। जीवात्मायें अपने-अपने इन्द्रियतृप्ति कार्यों में लगे रहते है, किन्तु यह कार्य भगवान् द्वारा निर्दिष्ट नहीं होते। इन्द्रियतृप्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए इस संसार के कर्म में प्रवृत्त होते हैं और वृद्धि के बाद स्वर्ग सुख की कामना करती रहती हैं। इसलिए सारे कर्मों को भगवान् के भरोसे करने पर कर्मों का फल सुख अथवा दु:ख का भोक्ता जीवात्मा नहीं होता यथा-

न माम कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफलेस्पृहा।

इति माम योऽभिजानाति कर्मभिर्नबध्यते।।[18]

जो व्यक्ति पूर्णतया भगवान् में लीन हो जाता है। उसे अपने आध्यात्मिक कर्मों के योगदान के कारण अवश्य ही भगवद्धाम की प्राप्ति होती है क्योंकि उसमें हवन आध्यात्मिक होता है और हव्य भी आध्यात्मिक होता है। यथा-

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।[19]

यहाँ भगवान् की सर्वव्यापकता एवं भगवान् के प्रति अनन्य भाव से समर्पित अध्यात्म का दर्शन होता है। आध्यात्मिक कर्म करते हुए जीव अन्ततोगत्वा आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। भगवान् विषयक् विविध कर्म होते हैं। कुछ योगी विभिन्न प्रकार के यज्ञों द्वारा देवताओं की भली-भाँति पूजा करते हैं और कुछ परब्रह्मरूपी अग्नि में आहुती डालते

हैं। भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना और विष्णु को हव्य रूप में सन्तुष्ट करना यज्ञ कहलाता है। सांसारिक द्रव्यों के लिए किया गया यज्ञ द्रव्य यज्ञ कहा जाता हैं तथा दिव्य ज्ञान के लिए किया जाने वाला यज्ञ, ज्ञान यज्ञ कहलाता है। भौतिक कल्पष से ग्रस्त बद्ध जीव को भौतिक वातावरण में ही कार्य करना पड़ता है किन्तु फिर भी उसे ऐसे वातावरण से निकलना ही होगा। जहाँ भौतिक कर्मों द्वारा बन्धन ही बन्धन है। जिस शक्ति के द्वारा वह उस कलुषित वातावरण से छूटता है और दिव्यता को धारण करता है, उसे आध्यात्मिक लाभ कहते हैं। उदाहरणार्थ- यदि कोई रोगी दूध की बनी वस्तुएं अधिक खाने से अश्वस्थ हो जाता है और पेट की गड़बड़ी से ग्रस्त हो जाता है तो उसे दही दिया जाता है जो दूध ही से बनी अन्य वस्तु है। भगवान् के द्वारा ही सम्पूर्ण जगत् बना है लेकिन यह विधि यज्ञ या कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए किये गये कार्य कहलाती है जो स्वास्थ्य का लाभ करती है इसी औषधी का नाम आध्यात्मिकता है। भौतिक जगत् के जितने भी कार्य भगवान् के निमित्त किये जाते हैं उतना ही अधिक आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न होता रहता है।

जो मनुष्य अपने जीवन को अध्यात्म में पूर्णतया लगाता है उसे कभी भी दु:ख नहीं हो सकता। जैसे अर्जुन को भगवान् कृष्ण समझाते हैं। यथा-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण:।।[20]

अपने मन को मेरे नित्य चिन्तन में लगाओ। मेरे भक्त बनो! मुझे नमस्कार करो और मेरी ही पूजा करो। इस प्रकार मुझमें पूर्णतया तल्लीन होने पर तुम निश्चित रूप से मुझको प्राप्त होगे। इस प्रकार भगवान् अर्जुन को समझाते हैं, उसका शोक दूर करते हैं। कल्मषग्रस्त जीव को भौतिक जगत् से छुटकारा पाने का एकमात्र साधन भगवद्भक्ति ही है। मनुष्य को चाहिए कि भक्तिमय प्रेम में उनका चिन्तन करें और निरन्तर विष्णुतत्त्व का अनुशीलन करें क्योंकि वही जगत् में सर्वश्रेष्ठ गुरु एवं ध्येय हैं। भगवान् की पूजा के लिए भारत में हजारों मन्दिर हैं जहाँ पर भक्ति का अभ्यास किया जाता है। जब ऐसा अभ्यास हो रहा हो, तब मनुष्य को चाहिए कि आध्यात्मिक लाभ लेना अति आवश्यक है क्योंकि जीवन का नित्य भौतिकता से एवं कल्मषता से ही सामना होता है जिससे अनेक नकारात्मक ऊर्जा प्राप्त होती है। खान-पान, रहन-सहन भी कुछ हद तक आज के परिवेश में नकारात्मकता एवं कलुषित वातावरणयुक्त जीवनचर्या पैदा हो रही है। जिससे आध्यात्मिकता कोषों दूर हो रही है।

अत: स्थिरता पूर्वक ध्यान, योग, जप, तपादि आध्यात्मिक वातावरण आश्रय लेकर ही इस कठिन दौर से निकलना पड़ेगा। अन्यथा दूसरा कोई भी उपाय नहीं है।

सन्दर्भ-

1. विष्णुपुराण 1.1.31
2. श्रीमद्भागवतमहापुराण 3.29.40-44 - 3.25.42, ब्रह्मवैवर्तपुराण खंड 4, 95.28
3. हितोपदेश प्रस्तावना श्लोक 72
4. श्रीमद्भगवद्गीता 15.19

5. श्रीमद्भगवद्गीता 4.11
6. श्रीमद्भगवद्गीता 15.5
7. श्रीमद्भागवतमहापुराण 3.29.21
8. श्रीमद्भागवतमहापुराण 3.29.22-25
9. श्रीमद्भागवतमहापुराण 3.29.27
10. श्रीमद्भागवतमहापुराण 1.10.03
11. श्रीमद्भागवतमहापुराण 1.10.4-6
12. श्रीमद्भागवतमहापुराण 1.10.23
13. श्रीमद्भागवतमहापुराण 3.3.10
14. श्रीमद्भागवतमहापुराण 2.3.5-51
15. श्रीमद्भागवतमहापुराण 2.4.20-22
16. श्रीमद्भागवतमहापुराण 4.4.17
17. श्रीमद्भागवतमहापुराण 4.7.15
18. श्रीमद्भगवद्गीता 4.14
19. श्रीमद्भगवद्गीता 4.24
20. श्रीमद्भगवद्गीता 9.34